राणा प्रताप और अकबर

ललित मोहन चतुर्वेदी*
प्रो० (डॉ०) नारद सिंह*

1567 ई० के अभियान में अकबर मेवाड के केवल पूर्वी भाग पर ही अधिकार कर पाया था। पश्चिमी मेवाड़ पर अभी उसका आधिपत्य नहीं हो पाया था। चित्तौड़ के पतन के बाद उदयसिंह के बेटे प्रतापसिंह ने साढ़े चार वर्ष यहाँ–वहाँ बिताए। फिर फरवरी 1572 ई० में उदयसिंह की मृत्यु होने पर मेवाड़ के सामंतों ने मेवाड़ की तत्कालीन राजधानी कुम्भलगढ़ में प्रताप का राज्याभिषेक किया।

मेवाड़ के शेष भाग को अधिकृत करने के लिए अकबर का जो संघर्ष प्रताप से आरम्भ हुआ, वह भारत के इतिहास में अतुलनीय है। एक ओर एक साधन सम्पन्न सम्राट की साम्राज्य विस्तार की आकांक्षा थी, तो दूसरी ओर अपनी मातृभमि की स्वतंत्रता की रक्षा करने का संकल्प था। टाड के शब्दों में, 'प्रताप ने चित्तौड़ को फिर पाने, अपने वंश के गौरव को पुनर्स्थापित करने तथा उसकी शक्ति को फिर से स्थापित करने का संकल्प किया।'[1]

इस संघर्ष में प्रताप का साथ देने वाले कुछ और राज्य थे जैसे मारवाड़, बूँदी, डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, ईडर और सिरोही।

1568 से 1572 ई० तक चार वर्ष अकबर ने मेवाड़ के आसपास के लगभग सारे राज्यों को अपने प्रभाव में लेकर मेवाड़ पर चारों ओर से सैनिक, आर्थिक और राजनैतिक दबाव डालना प्रारंभ किया। इस बीच उसने मेवाड़ पर कोई अभियान नहीं किया। ईडर, सिरोही, डूँगरपुर, बाँसवाड़ा ओर बूँदी को भी मेवाड़ से अलग करने का उसने प्रयास किया।

अगस्त–सितम्बर 1572 में अकबर ने क्रमशः जलाल खां, राजा मानसिंह, राजा भगवानदास और राजा टोडरमल के भी दूत–मंडल प्रताप के पास भेजे, किन्तु वे प्रताप को मुगल दरबार में उपस्थित होने के लिए तैयार न कर सके। अब अकबर

***शोधार्थी : स्नातकोत्तर इतिहास विभाग वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा**
***शोध–निर्देशक : स्नातकोत्तर इतिहास विभाग वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा**

ने प्रताप के विरूद्ध मानसिंह के नेतष्त्व में अप्रैल 1576 में एक विशाल सेना भेजी। राणा प्रताप ने मुगल सेना का मुकाबला करने के लिए यथोचित सामरिक व्यवस्था की और अपनी सेना के साथ हल्दीघाटी से लगभग तेरह किलोमीटर दूर लोहसिंह गाँव के समीप पहुँच गया। वहाँ से मुगल छावनी लगभग बीस किलोमीटर दूर थी।

प्रताप और मुगल सेना के मध्य जो युद्ध हुआ वह हल्दीघाटी के युद्ध के नाम से इतिहास में विख्यात है। वैसे युद्ध हल्दीघाटी के दर्रे में नहीं हुआ था। अबुल फजल इसे खामनौर का युद्ध कहता है[2] तथा इतिहासकार बदायूँनी, जो स्वयं युद्ध में उपस्थित था, इसे गोगुण्डा का युद्ध कहता हैं।[3] पर उसके वर्णन से स्पष्ट है कि युद्ध उपर्युक्त दोनों स्थानों पर नहीं हुआ था और न संकरे दर्रे के किसी भाग में हुआ। दर्रे के मध्य जो एक छोटा–सा मैदान बादशाह बाग के नाम से है, उसमें भी युद्ध होना संभव नहीं था। वस्तुतः मुगल सेना हल्दीघाटी के मुहाने से लेकर बनास नदी तक फैली थी। बदायूँनी के अनुसार प्रताप की सेना घाटी के पीछे से आई। अतः स्पष्ट है कि युद्ध हल्दीघाटी के दर्रे के मुहाने के बाहर घाटी तथा खामनौर ग्राम के मध्य हुआ। खामनौर के पास ही हल्दीघाटी के दर्रे का छोर है इसलिए अबुल फजल इस युद्ध को खामनौर का युद्ध कहता है। दोनों पक्षों की सेनाओं की जो संख्या राजस्थानी स्रोत देते हैं वह अतिशयोक्तिपूर्ण है। वास्तव में मानसिंह की सेना में पाँच हजार सैनिक और राणा की सेना में तीन हजार घुड़सवार थे।[4] मुगलों के पास छोटी तोपें भी थीं, जबकि राणा के पास तोपें नहीं थीं। हाथी दोनों पक्षों में थे।

मुगल सेना का नेतृत्व सैयद अहमद खाँ बारहा, गाजी खाँ बदख्शी, मेहतर खाँ, जगन्नाथ कछवाहा, आसफ खाँ और माधोसिंह कछवाहा के साथ स्वयं मानसिंह कर रहा था। उधर राणा हकीम सूर, ग्वालियर के भूतपूर्व राजा रामशाह और मानसिंह झाला के साथ युद्ध के लिए सन्नद्ध था। 18 जून, 1576 ई० की प्रातः राणा के सेना के अग्रिम दल ने दर्रे के उत्तर–पूर्वी मुहाने से हकीम सूर के नेतृत्व में निकलकर आक्रमण की पहल की। पीछे से राणा भी सेना लेकर आ गया। प्रथम आक्रमण से मुगल सेना बनास नदी के पार तक खदेड़ दी गई। अब युद्ध और सघन हो उठा। राणा अपने प्रसिद्ध घोड़े चेतक पर और मानसिंह हाथी पर बैठे अपने–अपने पक्षों का नेतृत्व कर रहे थे। युद्ध में निरन्तर मुगलों पर दबाव बढ़ रहा था। यह देखकर मेहतर खाँ अपने ताजे सैन्यदल के साथ यह घोषित करते हुए राजपूतों से आ भिड़ा कि अकबर स्वयं रणक्षेत्र में आ रहा है। ताजे सैनिकों के आ जाने और अकबर के स्वयं आने के समाचार से मुगल सैनिकों में जोश का संचार हुआ लेकिन इससे राणा के सैनिकों का उत्साह कम हो गया। सुबह चार बजे से शस्त्र धारण किए राणा के सैनिक थक भी बहुत गए थे। युद्ध में पासा पलटा देख

राणा के अनुचर राणा को सुरक्षा के लिए दर्रे के भीतर ले गए, जहाँ से वह गोगुण्डा को चल पड़ा। राणा के पलायन के बाद युद्ध कुछ समय और चला और उसमें मुगलों की विजय हुई।[5]

बदायूँनी ने भी युद्ध में भाग लिया था। युद्ध के दौरान उसने आसफ खाँ से पूछा कि जब दोनों ओर राजपूत सैनिक हैं, तो यह कैसे ज्ञात होगा कि कौन राजपूत सैनिक पक्ष के हैं और कौन विरोध के। इस पर आसफ खाँ ने उत्तर दिया कि राजपूत सैनिक किसी भी पक्ष के हों, उनके मारे जाने से लाभ इस्लाम को ही होगा। इस परामर्श पर बदायूँनी ने दोनों पक्षों के राजपूतों पर निशाना लगाना शुरू कर दिया। यह घटना मुगल सेनानायकों की संकुचित वृत्ति को दर्शाता है।

मानसिंह ने इस भय से राणा का पीछा नहीं किया कि कही राणा के छिपे सैनिक मुगलों को परेशान न करें। उसने सैनिकों को राणा के प्रदेश में लूटमार करने से भी मना कर दिया। सम्राट अकबर इस विजय से संतुष्ट न था और उसने मानसिंह को एक तो इसलिए फटकारा कि मानसिंह ने राणा का पीछा नहीं किया था और राणा को जीवित या मृत पकड़ने में सफल नहीं हुआ था और दूसरे उसने राणा का प्रदेश लूटने से मुगल सैनिकों को मना किया था। इसके बाद कुछ समय तक मानसिंह और आसफ खाँ को दरबार में आने की मनाही कर दी गई। कुछ समय बाद अवश्य अकबर का रोष समाप्त हो गया।

राणा प्रताप की पराजय के कारण सुस्पष्ट हैं। राणा यदि दर्रे पर सेना न सजाकर ऐसे विभिन्न सामरिक महत्त्व के स्थानों में अपने सैनिक रख छोड़ता जहाँ से मुगलों को परेशान किया जा सकता तो अधिक अच्छा होता। दूसरे, मुगलों के पीछे हटने पर राणा का मैदान में आकर युद्ध करना भी हानिप्रद सिद्ध हुआ।[6] हल्दीघाटी की पराजय से शिक्षा लेकर राणा ने भविष्य में गुरिल्ला युद्ध करना ही ठीक समझा।

प्रताप ने अकबर से मुकाबला करने के लिए अपनी शक्ति ओर व्यवस्था को नए सिरे से संगठित किया। उसने प्रतिज्ञा की कि चित्तौड़ पर जब तक वह फिर से अधिकार नहीं कर लेगा, वह राजसी जीवन से दूर रहेगा। विभिन्न किलों की किलेबन्दियाँ की गई और मैदानी लड़ाई के स्थान पर गुरिल्ला युद्ध प्रणाली अपना ली गई। अक्टूबर, 1577 में अकबर ने भगवानदास और मानसिंह के साथ मीर बख्शी शहबाज खाँ को राणा के विरूद्ध भेजा। 3 अप्रैल, 1578 को मुगलों ने कुम्भलगढ़ ले लिया और कुछ समय के बाद गोगुण्डा और उदयपुर भी अधिकृत कर लिया। इसके बाद जैसे ही शाहबाज खाँ लौटा। राणा ने गुरिल्ला हमले प्रारम्भ कर दिए। इसे रोकने के लिए अकबर ने दिसम्बर 1584 में जगन्नाथ कछवाहा को भेजा, लेकिन राणा हर बार बच निकला। उपर्युक्त मुगल अभियानों के कारण राणा

के परिवार को वनों और पहाड़ों में अवर्णनीय कष्ट झेलने पड़े किन्तु राणा ने धैर्य नहीं छोड़ा और अदम्य साहस के साथ मुगलों का सामना करता रहा।

1585 ई० के बाद उत्तर–पश्चिम सीमान्त में अकबर की व्यस्तता का राणा ने पूरा लाभ उठाया और मुगलों द्वारा अधिकृत मेवाड़ राज्य पर आक्रमण करके उसने उदयपुर, माण्डलगढ़, कुम्भलगढ़ आदि को पुनः अधिकृत कर लिया।[7] दुर्भाग्य से चित्तौड़ पर राणा फिर से अधिकार न कर सका और उसे चावण्ड में अपनी राजधानी बनानी पड़ी। 19 जनवरी, 1597 को स्वतंत्रता के दीप स्तम्भ इस दुर्धर्ष योद्धा का देहावसान हुआ।

राणा प्रताप ने पच्चीस वर्ष तक अत्यल्प साधनों के साथ एक ऐसे शत्रु से टक्कर ली, जो एक विशाल साम्राज्य का सशक्त स्वामी था और जिसके पास श्रेष्ठतम साधन थे। इस संघर्ष में राणा का उद्देश्य अपने राज्य की स्वतंत्रता और अपने वंश के गौरव की रक्षा करना था और इसके लिए उसने हर प्रकार की कठिनाइयाँ सहीं। कुछ इतिहासकार[8] कहते हैं कि प्रताप ने भारत को एक बनाने के अकबर के प्रयास में योग न देकर गलती की। वस्तुतः यह दृष्टिकोण उचित नहीं है। इसमें प्रताप का दोष कम, अकबर का अधिक था, जिसने लगातार राणा के दरबार में उपस्थित होने पर जोर दिया और राणा इसी के लिए तैयार न था। अकबर की धर्मनिरपेक्षता की नीति यदि पूरे मुगलकाल तक जीवित रहती, तो कुछ सीमा तक राणा को भारत की एकता का बाधक कहा भी जा सकता था। अकबर की यह नीति अस्सी साल से अधिक न चली और औरंगजेब के समय अधिकांश राजपूत राज्यों को प्रताप के मार्ग पर ही चलना पड़ा।[9]

यह कहना कि राणा ने अकबर की अधीनता न मानकर उसके राष्ट्रीय कार्यों में योग न दिया, राष्ट्रीयता और एकता के सिद्धान्त की खींचतान करना है। जहाँ अकबर का उद्देश्य साम्राज्य–विस्तार करना था, वहाँ राणा का उद्देश्य अपनी मातृभूमि की और अपने वंश के गौरव की रक्षा करना था और उसमें अकबर से अधिक प्रताप सफल हुआ।

यह कहा जाता है कि आखिर मेवाड़ ने प्रताप के पुत्र अमरसिंह के समय अपनी स्वाधीनता खो ही दी, फिर क्यों नहीं प्रताप ने खुद अकबर की अधीनता स्वीकार करके मेवाड़ को विनाश से बचा लिया ?[10] इस संबंध में विचारणीय है कि अमरसिंह ने 1615 ई० में जिन शर्त्तों पर मुगल सम्राट की अधीनता स्वीकार की थी वे इसलिए प्राप्त हुई थी कि मेवाड़ ने विगत 43 वर्षों तक मुगल साम्राज्य से संघर्ष किया था और इस संघर्ष का बड़ा भाग प्रताप के समय किया गया था।[11]

इसमें संदेह नहीं कि राणा का प्रतिरोध श्लाघनीय था। पर यह सोचना गलत है कि राणा के साथ सहयोग न करने वाले राजपूत राज्य कायर थे और उन्हें

अपनी स्वतंत्रता प्यारी नहीं थी। वस्तुतः यदि इन राजाओं को लगता कि उनका घर, धर्म और स्वतंत्रता अकबर की अधीनता स्वीकार करने से खतरे में पड़ जायेगी तो वे अवश्य राणा का साथ देते। अकबर तो मात्र यह चाहता था कि वे उसकी अधीनता स्वीकार करें। इसके बदले इन राज्यों के शासकों को मुगल साम्राज्य में उन्नति के पूरे अवसर मिलते थे। इन राज्यों ने विगत इतिहास से यह देख लिया था कि संघर्ष से कितना विनाश होता है। जब उन्हें अकबर के सहिष्णु शासन के अधीन विनाश से मुक्ति की और शांति की सम्भावना दिखी तो उन्होंने अकबर की अधीनता तुरंत स्वीकार कर ली। उन्हें मेवाड़ जो नहीं दे पाया और नहीं दे सकता था, वह मुगलों की अधीनता से उन्हें प्राप्त हो रहा था।[12]

अकबर इन राजपूत राज्यों से केवल चार बातों की अपेक्षा करता था। प्रथम, वे साम्राज्य को कर के रूप में कुछ राशि दें। दूसरे, वे अपनी विदेश नीति और पारस्परिक युद्धों तथा विवादों को निपटाने का अधिकार सम्राट को समर्पित कर दें। तीसरे, आवश्यकता पड़ने पर वे साम्राज्य को निश्चित सैनिक सहायता दें और चौथे, वे अपने को साम्राज्य के अभिन्न अंग समझें। न तो उन्हें विवाह संबंध स्थापित करने के लिए बाध्य किया जाता था और न उनके आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप ही किया जाता था।

फारसी इतिहासकारों के वर्णन से यह ध्वनि निकलती है कि राणा और सम्राट के मध्य हुआ युद्ध एक हिन्दू–मुस्लिम प्रश्न था। सच तो यह है कि यह हिन्दू धर्म के विरूद्ध इस्लाम का संघर्ष न होकर मेवाड़ राज्य और मुगल साम्राज्य के मध्य शुद्ध राजनीतिक संघर्ष था। यदि यह हिन्दू–मुस्लिम प्रश्न होता तो राणा हकीम खाँ सूर को और अकबर मानसिंह को सेना की कमान न सौंपते। यदि मेवाड़ का शासक मालवा के बाजबहादुर या गुजरात के मुजफ्फरशाह के समान कोई मुस्लिम शासक होता तो भी अकबर मेवाड़ के साथ वही व्यवहार करता। वस्तुतः मुगल–मेवाड़ संघर्ष मुगल–साम्राज्यवाद और मेवाड़ की स्वतंत्रता के मध्य संघर्ष था।

जो भी हो, राणा प्रताप की कीर्ति आज भी अरावली की पर्वत श्रेणियों में गूँजती है और उसका स्वातंत्र्य प्रेम, साहस, संघर्ष आज भी भारतवासियों को प्रेरणा देते हैं। उसका व्यक्तित्व उनके लिए अमूल्य दीपस्तम्भ के समान है।

राणा की मृत्यु के बाद उसके पुत्र अमरसिंह ने भी अकबर की अधीनता स्वीकार करने से इंकार कर दिया। 1599 और 1603 ई० में अकबर ने सलीम को मेवाड़ के विरूद्ध भेजा लेकिन सलीम कार्य पूरा नहीं कर सका।

अकबर ऐसा प्रथम मुस्लिम शासक था, जिसने राजस्थान के राजपूतों के साथ उदारता का व्यवहार किया। जो अभी तक मुस्लिम शासकों के कट्टर विरोधी थे, वे ही अब मुगल साम्राज्य के स्तम्भ बन गए। उनके सहयोग से उसने

साम्राज्य विस्तार किया और उसे दक्ष सेनानायकों, प्रशासकों और अधिकारियों की सेवाएँ प्राप्त हुईं। राजस्थान के संबंध में अकबर ने वह गलती नहीं की जो सुल्तानों ने की थी। उसने यहाँ के राज्यों को साम्राज्य विलीन नहीं किया, बल्कि अधीनता स्वीकार कराके उन्हें उनका राज्य वापस कर दिया और उनके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं किया। योग्य और प्रमुख राजपूतों को उसने ऊँचे पद देकर राजस्थान में किसी भावी विरोध के संगठन की सम्भावना को समाप्त कर दिया। ये राजपूत उसके राजनीतिक ढाँचे के अभिन्न अंग बन गये। इन्हें अपनाकर अकबर ने अपनी कूटनीतिक क्षमता का श्रेष्ठ परिचय दिया।

सन्दर्भ सूची :–

1. टॉड – एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, भाग 1, पृ० 345
2. अबुल फजल – अकबरनामा, भाग 3, पृ० 245
3. बदायूँनी – मुन्तखब–उत–तवारीख, भाग 2, पृ० 231–32
4. वही, भाग 2, पृ० 228–31
5. अबुल फजल – अकबरनामा, भाग 3, पृ० 174–75,
6. जी० एन० शर्मा – मेवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स, पृ० 93, 1987
7. वही, पृ० 103
8. वही, पृ० 106
9. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव – अकबर दी ग्रेट, भाग 1, पृ० 223
10. जी० एन० शर्मा – मेवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स, पृ० 106, 1987
11. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव – अकबर दी ग्रेट, भाग 1, पृ० 223–24
12. रमाशंकर त्रिपाठी – राइज एण्ड फाल ऑफ दी मुगल एम्पायर, पृ० 223–25

~~**~~